International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 11 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

विद्यापति–साहित्य में वस्त्रोद्योगगत विवरण

डॉ0 सुनीता प्रसाद
एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास)
बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर (बिहार)

संस्कृत साहित्य में क्षौम, कौशेय आदि शब्दों का ण्प्रयोग मिलता है। इनका अर्थ है– रेशमी वस्त्र। पर ये भिन्न–भिन्न प्रकार के होने के कारण भिन्न–भिन्न नाम से जाने जाते थे। इनका उत्पादन भी विभिन्न क्षेत्रों में होता था। इसके लिए विभिन्न प्रकार के पाले गए कीड़ों से रेशम का उत्पादन होता था। ये कीड़े अलग–अलग पेड़ों पर पलने के कारण अलग–अलग रंग के रेशम उत्पन्न करते थे। मुख्यतया यह व्यवसाय महाकाव्यों से पहले का प्रतीत होता है क्योंकि महाकाव्यों में सिल्क उद्योग के संबंध में बहुत सामग्री प्राप्त होती है उसके बाद के साहित्यिक ग्रंथों में इनका उल्लेख कहीं प्रसंगवत् कहीं विशेष रूप से किया गया है। तब से यह उद्योग क्रमशः विकसित होता रहा।

रामायण में रेशम के कीड़े पालने के चार स्थानों का उल्लेख है– मगध, अंग, पुण्ड्र, पूर्वी प्रदेश, जिससे अभिप्राय संभवतः आसाम से रहा होगा। ये जंगली क्षेत्रों में पाले जाते थे क्योंकि इनके खाने वाले पत्ते इन्हीं क्षेत्रों के पेड़ों पर पाए जाते थे। चार प्रकार के वृक्षों पर इनके पालने जाने का ज्ञान प्राप्त होता है – नाग, लुच, बकुल और वट। इन पेड़ों पर पलने वाले कीड़ें से अलग–अलग रंग के रेशम तैयार होते थे जैसे– नाग पर पीला, लकुच पर गेहुँवन, बकुल पर सफेद और वट पर सफेद पीला लिए जैसे मक्खन हो। इनसे कभी–कभी विभिन्न रंगों को एक में मिलाकर भिन्न–भिन्न रंगों के भी रेशम तैयार किए जाते थे।

सिल्क की विभिन्न प्रजाति के कीड़ों से विभिन्न प्रकार के सिल्क प्राप्त किए जाते थे। मुख्यतया चार प्रकार की कीड़ों की जानकारी हमें प्राप्त होती है –

1. कौशेय

संभवतः यह कीड़ों के द्वारा बनाए गए कोशों से निकाला जाता होगा। जिसमें कीड़े रहते होंगे और अपने ऊपर जल बुनकर कोशा तैयार करते होंगे।

2. प्रतोरण

ये पत्तों पर रहने वाले कीड़े हैं जो पत्तों पर ही अपने लार से रेशम तैयार करते रहते थे। यह अत्यन्त नरम प्रकार का रेशम होता था। यह रेशम कीड़ा पालने वाले पौधों के अनुसार चार प्रकार के होते हैं।

3. चिनपट

इस का उल्लेख अर्थशास्त्र में हुआ है। चिनपट का शाब्दिक अर्थ है 'चीन का वस्त्र'। इसका प्रयोग चीन में पैदा होने वाले रेशमी वस्त्र के संदर्भ में यहाँ कौटिल्य ने किया है। ये शहतूत के पेड़ों पर पाले जाते हैं।

4. क्षौम

रामायण में इसका भी प्रयोग है जो अलसी के रंग का बताया गया है। आस्तम में पाले जाने वाले ये रेशम के कीड़े दो से तीन शताब्दियों तक जीवित रहते थे।

गुप्तकाल में वस्त्र उद्योग सबसे अधिक विकसित अवस्था में था। कालिदास के ग्रंथों तथा वाण से ज्ञात होता है कि वाराणसी रेशमी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था।

वस्त्र उद्योग

गुप्तकाल में वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में प्रर्याप्त उन्नति हुई। इस काल में सूती, ऊनी तथा रेशमी सभी प्रकार के वस्त्र बनते थे। अमरकोश में चार प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। ये हैं – बाल्क (छाल के बने) फाल (फल के रेशे से बने) कौशेय (रेशमी वस्त्र) और रांकव (पश्मीना)। इस काल में धनी लोग बहुत बारीक[1] तथा निर्धन व्यक्ति मोटा कपड़ा[2] पहनते थे। ऋषि–मुनि साधारण तथा वृक्षों की छाल के कपड़े या चीते की छाल पहनते थे।[3] रघुवंश से ज्ञात होता है कि तन्तुवाय वस्त्र बनाने में इतने निपुण थे कि उनके बनाये वस्त्र फूँक मात्र से ही उड़ जाते थे।[4] यद्यपि संपूर्ण भारतवर्ष अपने वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध था। तथापि इस उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र गुजरात, बंगाल और तमिल थे। विशेष रूप से प्रसिद्ध स्थलों में रेशमी वस्त्रों के लिए बनारस तथा उच्च कोटि के सूती वस्त्रों के लिए मथुरा प्रसिद्ध केन्द्र था। इस काल में चीन से भी रेशम आयात किया जाता था। वराहमिहिर ने 'ब्रजलेप' का उल्लेख किया है जिससे पता चलता है कि इस के लोग वस्त्रों को रंगने की रसायनिक क्रिया से परिचित थे।

गुप्तकाल में सामान्यतः वस्त्र कपास से ही बनाए जाते थे। लेकिन ऊन, चमड़े, रेशम वृक्षों की छाल से भी वस्त्र निर्मित किए जाते थे। वस्त्र अनेक प्रकार के होते थे, जैसे–महीन और मोटे, विरंजक रेशम, पुलकबन्ध, पुष्पपट्ट आदि।[5] अजंता के भित्ति चित्रों के अध्ययन से पता चलता है कि वस्त्र बनाने के चार तकनीक प्रचलित थे।[6] एस0 के0 मैती का कहना है कि कपड़े के दूसरे प्रकार के लिए आवश्यक सामानों का निर्यात सामान्यतया उन्नत और महीन रोये द्वारा होता था।[7] ऊन की आवश्यक धुलाई एवं सफाई के बाद अच्छे कारीगरों द्वारा गर्म कपड़ों का निर्माण होता था।[8]

फाहियान के विवरणों से पता चलता है कि अमीर लोग बालों से बने कपड़ों का उपयोग करते थे, विशेषकर लद्दाख में, जो भारत के सबसे ठंढ़े प्रदेशों में है।[9] कपड़ों के बुनने की प्रक्रिया इतनी विकसित थी कि यह रेशम के समान सुंदर होता था।[10] नारद भी बालों से बने कंबलों का वर्णन करते हैं, जो कि मुख्यतया पहाड़ी बकरी के बालों से बनाया जाता था।[11] कई अन्य वर्णनों में भी बालों[12] से निर्मित कंबलों[13] का वर्णन है। ह्वेनसांग से भी पता चलता है कि मथुरा में सूती वस्त्र तैयार होते थे।[14] अमरकोश में कई शब्द है जिन्हें बढ़िया या मोरे किस्म के कपड़ों, पलंग–पोश फर्श के कपड़े, स्त्रियों तथा पुरूषों की पोशाक आदि के लिए प्रयुक्त किया गया है। गुप्त सिक्कों पर दी गयी राजसी पोशाकों से स्पष्ट होता है कि लोग मिले हुए तथा बिना कटे हुए कपड़े भी पहनते थे।

रेशम–उद्योग

प्राचीन भारत में रेशम का व्यवहार लोकप्रिय था। यांत्रिक रूप से यह विकसित हो चुका था। चीन से जो रेशम आता था, उसका नाम 'चीनांशुक' होने से प्रकट है कि दूसरे प्रकार का रेशम इसी देश में बनता था। उसके विविध प्रकारों का उल्लेख अमरकोश में किया गया है।[15] वाण ने हर्षचरित में उसकी विशेषतः दो किस्में दी है– पुलकबन्ध और पुष्पपट्क, जिसमें पुष्पों की छाप छपी या बुनी होती थी।[16] इस प्रकार के छपे वस्तु का उपयोग मथुरा संग्रहालय की कौमारी प्रतिमा के वस्त्र पर हुआ है। इसी वर्ग में वर–वधु के दुकूल भी आते थे जिन पर हंसों के चिन्ह छपे या बुने होते थे। कालिदास ने बार–बार उल्लेख किया है।[17] रेशम में इनके अतिरिक्त वह काशी का अद्भूत किनखाबकलाबत्तू (सोने–चाँदी के तारों के संयोग से बना वस्त्र) भी था जो सहस्त्राब्दियों पुराना है। सातवीं सदी के शान्तिदेवकृत शिक्षा

समुमच्चय में काशी के बने इस रेशमी वस्त्रों को सर्वोत्तम माना गया है।[18] वाण के अनुसार पुण्ड् देश का बना क्षौम उसके गांव तक में मिलता था।[19] एक प्रकार की सुंदर रूई के बने रेखांकित वस्त्र का निर्माण ह्वेनसांग के कथन के अनुसार मथुरा में होता था।[20] रेखांकित परिधानों का रूपांकन अजंता के अनेक चित्रों पर हुआ है। कामरूप से प्राप्त राजा हर्ष के उपहारों में अन्य वस्त्रों के साथ 'जातिपट्टिका' और 'चित्रपट' है।[21] इनमें से पहला बुना हुआ रेशम था, दूसरा छींट अथवा चित्रों से अंकित रूई का बना था। 436 और 472 ई0 के मन्दसौर लेख में रेशम बुनने वालों की श्रेणी का उल्लेख है तथा अमरकोश में रेशम बुनने की प्रक्रिया का।

गुप्तकाल में रेशम उद्योग खूब प्रचलित था। राजकीय सदस्यों की मांग पर कुछ श्रेष्ठ प्रकार के रेशों का आयात चीन से भी किया जाता था।[22] साधारण तौर पर रेशमी वस्त्रों का उपयोग शादी[23] और धार्मिक अवसरों पर होता था।[24] अमीर घराने की औरतें रेशमी वस्त्र सामान्यतया जाड़े में पहनती थी।[25] राजकुमारों द्वारा भी रेशमी वस्त्र उपयोग में लाया जाता था।[26] रेशम के बुनने की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन अमरकोश में मिलता है। सबसे पहले धागों का निर्माण रेशम के कीड़े से होता था और तब उन्हें उत्तम प्रकार के रेशों से बुना जाता था।[27] जिनसे अंततः रेशम के कपड़ों का निर्माण होता था।[28] रेशम का उपयोग ज्यादातर समाज के अमीर लोगों द्वारा होता था। मंदसौर के रेशमी बुनकर संघ से प्राप्त घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि बहुत से लोग रेशम उद्योग में कार्य करते थे।[29] और इस संघ के पास इतना अधिक पैसा था कि वह किसी भवन या मंदिर की मरम्मत करा सकता था।[30]

पूर्वमध्य काल में मिथिला में जो वस्त्र पहने जाते थे वे आधुनिक परिधान से भिन्न नहीं थे। उष्ण जलवायु में निवास करने वाली अधिकांश प्राचीन जातियों की भाँति लोग सामान्यता लम्बे कपड़े पहनते थे जो शरीर के चारों ओर पेटी और कोटों से सम्बद्ध रहता तथा कन्धों पर सजा रहता था। अधोपरिधान सामान्य रूप से एक ऐसा वस्त्र होता था जो कटि के चारों ओर पेटी अथवा मेखला से रूप में रहता था और उत्तरीय इसी प्रकार की दूसरी लम्बाई होती थी जो ओढ़नी के रूप में कन्धों पर पहना जाता था। उत्तरतीय वसन विशेष रूप में निम्न जातियों के घरों में उपयोग में नहीं लाया जाता था और न ग्रीष्मऋतु में ही। एक तृतीय परिधान 'प्रवर' भी पहना जाता था जो लबादे अथवा दुपट्टे की भाँति शीतऋतु में ओढ़ लिया जाता था।

स्त्री एवं पुरूष दोनों का यह प्रचलित परिधान था, भिन्नता केवल वस्त्र के आकार–प्रकार एवं धारण करने के ढ़ंग में थी। कभी–कभी अधोपरिधान समानुपातिक रूप में कटि–वस्त्र अति लधु होता था, किन्तु धनी जातियों में से बहुधा आपादलम्बित हुआ करते थे। प्रारम्भिक मूर्तिकला में अधोपरिधान सप्रयास आगे की ओर चूनर अथवा स्तर डालकर एक दीर्घ वस्त्रमेखला द्वारा जिसका एक शिरोभाग परिधान के आगे टांगों के बीच में लटका रहता था, रुका हुआ प्रदर्शित किया गया है। कुछ मूर्तियों में यह वस्त्रमेखला ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतःपरिधान का ही एक शिरांश हो, जो आधुनिक युग की साड़ी की भाँति कन्धों पर भी डाला जा सकता था।[31]

प्राचीन हिन्दू पुरूष और स्त्रियाँ प्रचलित मात्रा में सजे वस्त्र और आभूषण पहनते थे तथा मिथिला में उस काल में यह प्रवृत्ति बढ़ ही गयी थी। स्त्रियाँ पुरूषों की तुलना में अधिक आभूषण पहनना पसंद करती थीं। धनी और गरीब दोनों वर्गों के लोग अपना पूरा ध्यान शक्ति और धन अपने शरीर को आपादमस्तक वस्त्राभरणों से सजाने में समर्पित करते थे। धोती और साड़ी सामान्य वस्त्र थे किन्तु स्त्रियाँ सिला हुआ वस्त्र जैसे–चोली पहनती थीं। राजाओं, सैनिकों, विद्यार्थियों, दुलहनों, सन्यासियों तथा विधवाओं द्वारा विशिष्ट प्रकार के वस्त्र पहने जाते थे। महिलाओं द्वरा विशेष रूप से केश–विन्यास को कलात्मक ढ़ंग से रखने में महान ध्यान रखा जाता था। अनेक प्रकार के आभूषण शरीर के प्रत्येक अंग के लिए बहुतायत में प्रयोग किये जाते थे। अंगूठी, जंजीर, बाजूबन्द और अन्य कई प्रकार के लोकप्रिय

आभूषण स्त्री और पुरूष दोनों धारण करते थे। किन्तु स्त्रियाँ अपना पूरा शरीर विविध आभूषण से ढँक लेती थीं।

साहित्यिक स्त्रोत से ज्ञात होता है कि पूर्वमध्यकाल में मिथिला में स्त्री–पुरुष दोनों एक ही अधोवस्त्र प्रायः प्रयोग करते थे तथा कभी–कभी उत्तरीय (ओढ़ना) का व्यवहार किया करते थे। पुरुष धोती पहनते थे जो सामान्यता छोटी और तंग होती थी। यह मुश्किल से घुटने के नीचे तक आती थी और कई स्थिति में यह उसमें भी छोटी पड़ती थी। ह्वेनसांग से सातवीं शताब्दी ए0डी0 में उत्तर भारतीयों के वस्त्र पहने जाने के सम्बन्ध में लियाा है कि ''जहाँ ठंढ़ी हवा बहती थीं वहाँ पुरूष वस्त्र को शरीर के बीच में लपेटते हुए काँख से लपेटकर बाँह को पार करते हुए दाहिने भाग में उसे लटका देते थे। स्त्रियाँ अपनी शरीर पर टोपी रखते थे। फूलों का हर एवं सोने का हार पहनते थे।[32] मिथिला में स्त्रियाँ साड़ी पहनती थीं जो धोती से बहुत लम्बी होती थी तथा स्त्रियों के पैर तक ढँकी जाती थीं। प्राचीनकाल में बिहार में भी स्त्रियाँ धोती की तरह ही साड़ी पहनती थीं। उनके कमर के ऊपर का भाग खुला रहता था जिसे बाद में छोटे ओढ़नी से ढकती थीं।[33] स्त्रियाँ कुछ अवसरों पर अपने सीने को चोली, स्तनपट्टा तथा कुछ स्थिति में कुर्त्ती से ढँकती थी।[34] यह नाभि से ऊपर और बाँह की ऊपर भाग से नीचे तक ढँका जाता था। ऊपर के वर्णित वस्त्र पूरे बिहार के लोगों को साधारण तथा सामान्य वस्त्र थे।

मिथिला में सर्वसाधारण में सूती वस्त्र पहनने का रिवाज था। लोग सुन्दर वस्त्र, गन्ध, माल्य और अलंकार धारण करते थे।[35] सभा में जय प्राप्त करने के लिए रेशमी वस्त्रों को धारण किया जाता था।[36] वृहत्कल्पभाष्य में चार प्रकार के वस्त्र का उल्लेख आया है–

1. वे वस्त्र जो प्रतिदिन पहनने के काम में आते हैं।
2. जो स्नान के बाद पहने जाते हैं।
3. जो उत्सव, मेले आदि के समय पहने जाते हैं।
4. जो राजा–महाराजा आदि से भेंट करने के समय धारण किये जाते हैं।[37]

मानसोल्लास में बृहद् राजकीय वस्त्रों का उल्लेख आया है। राजा प्रत्येक उत्सव पर नये वस्त्र पहनते थे।[38] ये वस्त्र विभिन्न रंगों और विभिन्न सूती, रेशमी और ऊनी कपड़ों से तैयार होते थे।[39] ये वस्त्र सामान्तया बिन्दुओं और नक्काशियों से तैयार किये होते थे।[40] ये वस्त्र मौसम के साथ परिवर्तित होते थे। सामान्यतया उजला वस्त्र गर्मी में और लाल वस्त्र वर्षा ऋतु में व्यवहृत किया जाता था।[41] ये राजकीय वस्त्र सामान्यतया चीन, अरब, तिब्बत, बंगाल और श्रीलंका से मंगाये जाते थे।[42] राजा स्वयं अपने को सुन्दर मुकुट से सजाते थे जिसमें हीरा या अन्य कीमती पत्थर जड़े होते थे।[43] सामान्य व्यवहार में प्रयोग होने वाला मुकुट पगड़ी थी।[44] सामान्त, दरबारी और कुलीन वर्ग के लोग सुन्दर कीमती वस्त्रों से अपने आपको सजाते थे[45] तथा विभिन्न प्रकार के कपड़ों से वे पगड़ियाँ बाँधते थे।[46] जंगलों में शिकारी छोटा निकर पहनते थे, जबकि उनके सेवक और नौकर धोती पहनते थे।[47] वहीं दूसरी ओर संगीतकार धोती और निकर दोनों पहनते थे।[48]

जैन सूत्रों के अनुसार निम्नलिखित वस्त्रों की गणना बहुमूल्य वस्त्रों में की जाती थी[49]–

1. आईणग– पशुओं की खाल से बने हुए वस्त्र थे। उन दिनों शेर, चीता, तेन्दुआ और हिरण की खाल से वस्त्र बनाये जाते थे।
2. सक्षिण – सूक्ष्म, वारीक बने हुए वस्त्र
3. सहिण कल्लाण – सूक्ष्म कलयाण, बारीक और सुन्दर वस्त्र

4. आप– भेड़ों के बालों के ऊनी वस्त्र

5. काप– नीला कपास के बने वस्त्र

6. खोमिय–पौनिक, कपास के बने वस्त्र

7. दुगुल्ल–दुकूल पौधे के तन्तुओं से बने वस्त्र

8. पट्ट – पट्ट के तन्तुओं से बने वस्त्र

9. देसराग–रंगीन वस्त्र

10. गज्जफल–पहनते समय कड़–कड़ शब्द करने वाले वस्त्र

11. फालिप–स्फटिक के समान स्वच्छ वस्त्र

12. कोयव–रोएँदार कम्बल

13. कम्बलग–कम्बल

14. कनक–सोने को पिघलाकर उसके रस में रंगे हुए सूत से निष्पन्न

15. कनककांत–जिसकी किनारियाँ सोने की हों।

16. कनकखचित–सुनहले धागे के बेलबूटों वाला वस्त्र

17. कनक स्पृष्ट–जिस पर सुनहले फूल कढ़े हों

18. वग्ध–व्याघ्र–चर्म से निष्पन्न

19. विवग्ध–चीते के चर्म से निष्पन्न

20. आभरण–पत्र आदि एक ही प्रकार के नमूनों से निष्पन्न

21. आभरणविचित्र–पशु, चन्द्रलेख, खस्तिक, घंटिका और भौनिक आदि अनेक नमूनों के निष्पन्न।

बृहत्कल्पभाष्य में पाँच प्रकार के कीमती वस्त्र बताये गये हैं–कोयव (रूई का वस्त्र), पावारग (कम्बल), दाढ़िआलि (दाँतों की पंक्ति के समान श्वेत वस्त्र), शरिका (टाट अथवा झूल आदि जो मोटे कपड़े से बुना गया हो) और विरलिका (दूहरे सूत से बुना हुआ वस्त्र)।

जैने सूत्र से भी ज्ञात होता है कि लोग सामान्यता दो ही वस्त्र धारण करते थे, एक उपर का (उत्तरीय) और दूसरा नीचे का (अन्तरीय)। उत्तरीय वस्त्र बहुत सुन्दर होता था। उप सर लटकते हुए मोतियों के झुमके लगे रहते थे, यह अखण्ड वस्त्र से बना होता था।[50] सिलाई का रिवाज था। सूई और धागे का प्रचार था।[51] साधुओं को अपने फटे हुए वस्त्रों में सीने की अनुज्ञा थी।[52] बाँस, लोहे और सींग की बनी हुई सुइयों का उल्लेख मिलता है।[53] फटे हुए कपड़े को अधिक न फटने देने के लिए उसमें गाँठ मार दी जाती थी।[54]

राजशेखर के अनुसार महिलाओं के तीन प्रकार के प्रमुख पोशाक और वस्त्र होते थे, जो निम्न प्रकार के थे–

1. उत्तरीय– यह आधुनिक दुपट्टे की तरह एक कपड़े का टुकड़ा था जो शरीर के ऊपर भाग को ढँकता था।[55]

2. कंचुक– यह सीने को ढँकने में व्यवहृत होता था।[56] यह नाभि तक पहुँचता था, जिसे चोली भी कहा जाता था।[57] स्त्रियाँ कभी–कभी कंचुकी का प्रयोग गद्दी के साथ भी करती थी।[58]

3. चान्दाटाका– यह आधुनिक पेटीकोट की तरह होता था।[59] यह अधोवस्त्र में व्यवहार होता था, जो कंचुक के नीचे होता था, उत्तरीय भी इस वस्त्र को पूरा कर देता था, क्योंकि इस तरह का वस्त्र शरीर के चारों ओर कंधो ने नीचे लपेटा जाता था। इसका कुछ भाग सिर पर रखा जाता था।

अलबरुनी ने महिलाओं के एक पोशाक केर्त्तका का वर्णन किया है जो एक प्रकार का छोटा कमीज होता था। यह कन्धों से लगा रहता था। यह बाँहरहित होता था तथा शरीर के बीच लटकता रहता था। उसमें जड़ी लगा रहता था।[60]

मिथिला में महिलाएँ प्रायः साड़ी ही पहना करती थीं तथा उसके साथ चोली का प्रयोग होता था। मिथिला में स्त्रियाँ साड़ी ही पहनती थी। उनके साड़ी पहनने का ढ़ंग इतना अच्छा था कि वे एक साड़ी से ही पूरे शरीर, वक्ष तथा सर को भी ढँक लेती थीं। विधवा स्त्रियाँ सिर्फ बिना किनारे की उजली साड़ी पहनती थी, जबकि कुँवारी तथा विवाहिता स्त्रियाँ विभिन्न रंगों की साड़ी और चोली प्रयोग करती थीं, गरीब स्त्रियाँ साधारण साड़ी पहनती थीं, जबकि अमीर स्त्रियाँ रेशमी एवं बूटेदार साड़ी और चोली का प्रयोग करती थीं। बिहार में छोटानागपुर और संताल परगनों में स्त्रियाँ प्रायः अधोवस्त्र तथा उत्तरीय ही पहनती थीं।

बृहत्कल्पयभाष्य, निशीध भाष्य, आचारांग, उत्तराध्ययन–सूत्र आदि जैन सूत्रों में स्त्रियों के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का वर्णन आया है–

1. उग्गहणतिग – गुह्य अंगों को ढँकने के लिए इसका उपयोग होता था। आकार में यह वस्त्र नाव की तरह होता था। बीच में चौड़ा और दोनों तरफ पतला यह वस्त्र कोमल होता था।

2. पट्ट– यह छुरे के समान चिपटा होता था, इसे धागों से कसकर बाँध दिया जाता और कमर को ढँकने के लिए यह काफी था। यह चौड़ाई में चार अँगूली स्त्री के कटिप्रमाण होता था। यह चौड़ाई में चार अंगूली स्त्री के कटिप्रमाण होता था। इसे कटि में बाँधा जाता था और आकार में यह आधुनिक जांघिये भी भाँति होता था।

3. उद्धोरुग– इससे कमर ढँक जाती थी तथा यह उग्गहणंतग और पट्ट के ऊपर पहनी जाती थी। इसे छाती के दोनों ओर कसकर बाँध दिया जाता था।

4. चलनिका–घुटनों तक आनेवाला यह बिना सिला वस्त्र होता था।

5. अभिंतर नियंसिणी– कमर से लगाकर आधी जाँघों तक लटका रहता था। वस्त्र बदलते समय स्त्रियाँ इसका अधिक उपयोग करती थीं जिससे वस्त्ररहित अवस्था में लोग परिहास न करें।

6. वहिनियंसिणी– घुट्टियों तक लटका रहनेवाला वस्त्र जिसे डोरी द्वारा कटि में बाँधा जाता था। इसके अतिरिक्त शरीर के ऊपरी भाग में पहने जाने वाले स्त्रियों के निम्न प्रकार के वस्त्रों की चर्चा जैन सूत्रों की है–

(i). कंचुक– वक्षस्थल को ढ़कने वाला बिना सिला वस्त्र जो कमर के दोनों तरफ बाँधा जाता था। काषालिक के कंचुक के समान यह ढाई हाथ लम्बा और एक हाथ चौड़ा होता था।

(ii). उक्कच्छिय (औपकक्षिकी) यह कंचुक के समान ही होता था। यह चौकोर और डेढ़ हाथ का होता था। इससे छाती, दक्षिण पार्श्व और कमर ढँकी जाती थी। वाम पार्श्व की ओर इसकी गाँठ लगती थी।

(iii). वेगच्छिप (वैकक्षिकी)–कंचुक और उक्कच्छिय दोनों को ढँकने वाला वस्त्र।

(iv). संघारी–संघारी चार होती थीं, एक एक हाथ की, एक दो हाथ की, एक तीन हाथ की और एक चार हाथ की। पहली संघारी प्रतिश्रम में, दूसरी और तीसरी बाहर जाते समय और चौथी समवशरण में पहनी जाती थीं।

(v). खंधकरणी– यह खर हाथ लम्बा और चौकोर वस्त्र तेज वायु आदि से रक्षा करने के लिए पहना जाता था। इससे कंधा और सारा शरीर ढँक जाता था।[61]

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि वस्त्रों को सीने की कला भारतीयों को प्राचीन समय से ही ज्ञात की। जैन सूत्रों का ऊपर वर्णन किया जा चुका है। ऋग्वेद[62] एवं एतरेय ब्राह्मण[63] में सिलाई के लिए सूई एवं सिलाई की विधि का वर्णन आया है। बुद्ध ने भी मठों में भिक्षुणियों का सिलाई के कार्य से मना किया है।[64] अमरकोष में सिलाई करने वाले का वर्णन किया है।[65] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी कमीज और पतलून का वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मिथिला में पूर्वमध्य काल में सिले वस्त्र का प्रयोग खूब होता था तथा स्त्री और पुरूष सिले वस्त्रों का प्रयोग बहुत करते थे।

विधवाएँ मिथिला में सादा जीवन–यापन करती थीं तथा वे अलंकार से दूर रहती थीं। उनके साड़ी का रंग उजला होता था तथा वे प्रायः बिना किनारे की ही साड़ी पहनती थीं। वे सामान्यतया चोली या कुर्ती का प्रयोग नहीं करती थीं। विधवाओं के वस्त्र का प्रचलन जो प्राचीनकाल से प्रचलित था वे प्रायः आज भी उसी रूप में है।

दुलहनों के लिए लाल रंग की साड़ी तथा चोली पहनने का प्रचलन था।[66] स्त्रियाँ विवाह में नये वस्त्र पहनती थीं। कई प्रकार के जड़ीदार वस्त्रों का प्रयोग धनी वर्ग की दुलहनों के लिए किया जाता था।

विद्याध्ययन में लीन ब्रह्मचारी और छात्र सामान्तया धोती ही पहनते थे जो नीचे घुटने तक जाता था तथा ऊपर वे एक प्रकार के ओढ़ने का प्रयोग करते थे जिससे वे शरीर के अन्य भागों को ढँक सकें, किन्तु जाड़े को छोड़ अन्य समय में प्रायः उनके शरीर के ऊपर के भाग खुले रहते थे।[67] राजकुमार जो विद्याध्ययन में रहते थे वे रेशमी वस्त्र पहनते थे। भिक्षु छात्र जो विद्याध्ययन करते थे उनके वस्त्र भी नियत होते थे।

सोमदेव ने अपने पससटिलकचम्पू में सेनाओं के वस्त्रों का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार सेनाएँ निम्न चार प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग सामान्यतया करती थीं–

1. धोती–यह घुटने तक ढँकी रहती थी।

2. कटार–भैंसा के सींग की मूठ से मढ़ा हुआ यह कमर तक लटकता रहता था।[68]

3. सैनिक अपने दोनों कंधों पर तरकस में तीर भरकर रखते थे।[69] हेमचन्द्र ने लिखा है कि सैनिक अपने शरीर को कवच से ढँके रहते थे।

4. माथे और मुँह को ढँकने वाले हेमलेट से वे नाक और आँख को ढँकते थे।

वाणभट्ट ने भी हर्षवर्द्धन की सेना में योद्धाओं का वर्णन करते समय सैनिकों के चार प्रकार के अंगरखे का वर्णन किया है। उनके नाम हैं– कंचुका, वारा–बाना, चिना–चोलाका और कुरयासाका। सैनिक की पोशाक छोटी होती थी, जिसमें चुस्त निकर जो जाँघ और घुटने के बीच तक जाता था जैसा कि खुजराहों के मंदिर में मूर्तियों में दर्शाया गया है।[70] डॉ0 एस.सी. राय[71] ने भी एक मूर्ति, जो हरपामा में पाया गया है, का उल्लेख किया है। इसमें घुड़सवार सैनिक को तीर और धनुष से लैश दिखाया गया है। उन्होंने अनुभव किया है कि सैनिकों का वस्त्र सामान्य जन के वस्त्रों से भिन्न होता था जिसको देखकर ही पहचाना जा सकता था कि वे सैनिक हैं।

मिथिला के दक्षिणी भाग, छोटानागपुर, संतालपरगना आदि क उरॉव, मुण्डा, भुईयाँ, मुसहर आदि के शरीर प्रायः खुले ही रहते थे, इन जंगली जातियों के शरीर पर वस्त्र नही के बराबर रहते थे। सिर्फ कमर में केवल तीन–चार ऊँगली विस्तृत वस्त्र परिवेष्टित कर वे धारण करते थे और महिलाएँ सिर्फ कमर और वक्ष को ढँक पाती थीं। जाड़े में ये पुआल में घुसकर या आग सेक कर शरीर की रक्षा करते थे।[72] यह स्थिति पूरे बिहार के अत्यन्त गरीब लोगों की भी थी। शूद्रों की भी प्रायः यही दशा थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1 अमरकोष, 6/116

2 अमरकोष, 6/116

3 कुमारसम्भव, 5/30

4 रघुवंश, 16/43

5 के0सी0 जैन, पूर्वोक्त, पृ0–200

6 वही

7 एस0 के0 मैती– इकॉनोमिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया, इन द गुप्ता पीरियड, पृ0–148

8 अमरकोष, 6.113, पृ0–157

9 लीग, पृ0–23

10 वही, पृ0–76

11 नारद स्मृति, 1, 63

12 अमरकोष, 3.132, पृ0–301

13 अमरकोष, 10.107, पृ0–224

14 के0सी0जैन– पूर्वोक्त पृ0–199

15 अमरकोष 2,6, 115–16

16 हर्षचरित, 1

17 भगवतशरण उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ0–250–51

18 शिक्षा समुच्चय, पृ0–208

19 वही, पृ0–4

20 ह्वेनसांग, वृतांत, पृ0–1

21 हर्षचरित, पृ0–4

22 किंग्स, पृ0–838

23 मालविका, पृ0–1122

24 फाहियान, वृतांत पृ0–22

25 ऋतुसंहार, 5, 8 पृ0—533
26 मृच्छकटिक, 4, पृ0—134
27 अमरकोष, 6.113
28 वही, 3.180 पृ0—313
29 फ्लीट, पृ0—89
30. वही
31. ए.एल. वासम—दी वन्डर दैट वाज इण्डिया, पृ0 175
32. सी.यू.—ट्रान्स वील, भाग—1, 148
33. मजुमदार—हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ0 613—14, भाग—1
34. वही
35. कल्पसूत्र—4/82
36. वृहत्कल्पभाष्य—5, 6035
37. वृहत्कल्पभाष्य, पीठिका—644
38. मनसोल्लास—III, 6, 1014—16
39. वही—1021—22
40. वही—1024—26
41. वही—1035—36
42. वही—1017—20
43. नरमामाला—XV, 60
44. नरमाला 1, 2, राजतरंगिनी, V-298 आदि
45. धनपाल—तिलक मंजरी— 130
46. के. एस. टी. एस. पी.—पृ0 133
47. दी रिसर्चर, (1964—65) पृ0—34
48. जगदीशचन्द्र जैन—जैन आगमन साहित्य में भारतीय समाज, पृ0—209
49. औपपातिक—पृ0 45
50. सूत्रकृतांग—4, 2, 12
51. आचारांग—2, 5, 1, 364
52. निशीचसूत्र—1, 40, पृ0—48 भाष्य—78, पृ0 50
53. वही—150
54. अमरसिंह—अमरकोष—II, V पृ0—118

55. अमरकोष में टिकसर्वासा–मनुष्य वर्ग–V 119
56. अमरकोष में कसिरास्वामीन–II, V 118
57. हर्षचरित्र, सम्पादन–के.पी. पार्व–अध्याय– IV, पृ–143
58. वही, अध्याय–1, पृ0 12
59. ई.सी. साच्चु–अलवरुनि इण्डिया, पृ0 209
60. जगदीशचन्द्र जैन–जैन आगमन साहित्य में भारतीय समाज, पृ0 213–14
61. ऋग्वेद–II, 23, 4
62. एतेरेय ब्राह्मण–III, 18
63. विनयपताका, पाचिट्टिया–25
64. अमरकोष– 11, 10, 6
65. आईत्संग– पृ0 68
66. हरिभद्रा सुरी–समरैपच्चिकाहा– II, पी. पीच 93, 101
67. देशोपदेश– VI, 9–10
68. ई. सी. सच्चु–अलवरुनि इण्डिया– I, पृ0 181
69. यससटिलकचम्पू–(पी0 पी0 461–460)
70. के.एस.टी.एस.–पृ0 133
71. एस.पी. राय–अरली हिस्ट्री एण्ड कलचर ऑफ काश्मीर, पृ0 210
72. रामदीप पाण्डेय–प्राचीन भारत की सांग्रमिकता, पृ0–21